इकाई 1 तत्त्वज्ञान में दर्शन की भूमिका

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 दर्शन शब्द का अर्थ

1.3 तत्त्वमीमांसा शब्द का अर्थ

- 1.3.1 भारतीय दर्शनों में तत्त्वमीमांसा
- 1.3.2 उपनिषद् दर्शन में तत्त्वमीमांसा
- 1.3.3 सांख्ययोग दर्शन में तत्त्वमीमांसा
- 1.3.4 न्यायदर्शन में तत्त्वमीमांसा
- 1.3.5 मीमांसा दर्शन में तत्त्वमीमांसा
- 1.3.6 शंकर मत में तत्त्वमीमांसा
- 1.3.7 रामानुज मत में तत्त्वमीमांसा

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.7 बोधप्रश्न

1.0 प्रस्तावना

मानव मन में कुछ स्वाभाविक अति सामान्य प्रश्न उठते हैं। जैसे मैं कौन हूँ? कहॉ से आया हूँ? जिस जगत् में रहता हूँ उसका आदिकारण क्या है? आदिकारण एक है या अनेक? जगत् किसके सहारे स्थित है? वह प्रलय में कहॉ विलीन होगा? क्या आदि सत्ता पारमार्थिक है? यदि है तो उसका स्वरूप क्या है? वह भी विश्व के विशिष्ट पदार्थों की भांति है या उससे भिन्न? जगत्की सत्यता का स्तर क्या है। यह व्यावहारिक है या पारमार्थिक? इत्यादि। ये प्रश्न किसी भी विज्ञान के क्षेत्र में नहीं आते। ये तत्त्व मीमांसा प्रश्न हैं। दर्शन शास्त्र एक वो घर शास्त्र है और वह इन तत्त्वमीमांसीम प्रश्नों का समाधान करने की चेष्टा करता है। इसके अतिरिक्त तत्त्व का ज्ञान कैसे होता है? उस ज्ञान की प्रामाणिकता क्या है? हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है? हमें क्या करना चाहिए? इन ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसीम प्रश्नों को भी दर्शन उतरित करने का प्रयास करता है।

उक्त प्रश्नों के सापेक्ष विभिन्न दर्शन एवं दर्शन सम्प्रदाय अपने-अपने तरह से समाधान ढूंढते हैं। यह उनकी अपनी दृष्टि होती है। ऐसे दर्शन के अनेक प्रजातियों का भारत में विकास हुआ। इस अध्ययन में हम विचार करेंगे कि – भारत की मुख्य दार्शनिक प्रणालियों में तत्त्व मीमांसीय प्रश्नों का क्या समाधान बताया गया है। तत्त्व मीमांसा के क्षेत्र में यही दर्शन की भूमिका है। इस इकाई के विस्तार को देखते हुये संहिताओं, उपनिषदों तथा षड़दर्शनों में ही तत्त्व मीमांसीम विचारों को देखने का प्रयास हुआ है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- दर्शन काs अर्थ समझ सकेंगे।
- तत्त्व मीमांसा किसे कहते हैं, इसका उत्तर दे सकेंगे।
- तत्त्व मीमांसा में दर्शन की भूमिका से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।
- संहिताओं एवं उपनिषदों की तत्त्व मीमांसा से परिचित होंगे।
- षड़दर्शनों की तत्त्व मीमांसा से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

1.2 दर्शन शब्द का अर्थ

दर्शन का अंग्रेजी अनुवाद प्राय: फिलॉसॉफी शब्द में किया जाता है। यह ग्रीस 'फिलास' और 'सोफिया' से बना है। फिलॉस का अर्थ है प्रेम और सोफिया का अर्थ है विद्या। फिलॉसॉफी शब्द का अर्थ हुआ विद्या से अनुराग। पाश्चात्य परम्परा दर्शन में बौद्धिक चिन्तन की प्रधानता देती है। इसीलिए दर्शन की परिभाषा दी जाती है – दर्शन मनुष्य का एक निष्पक्ष बौद्धिक प्रयत्न है जिसके द्वारा वह विश्व को उसकी सम्पूर्णता में समझने की चेष्टा करता है। भारतीय परम्परा में दर्शन का अर्थ है देखना, साक्षात्कार करना – **दर्शनं साक्षात्करणम्**। इसका उत्पत्ति जन्य अर्थ है – जिसके द्वारा देखा जाय वह दर्शन है – दृश्यतेडनेन इति दर्शनम्। इस प्रकार देखने (जानने) और देखने के साधन दोनों अर्थों में दर्शन का प्रयोग भारतीय परम्परा में होता रहा है। हरिभद्र ने दर्शन का अर्थ दार्शनिक प्रणाली के अर्थ में किया और अपनी पुस्तक का शीर्षक षड़दर्शन समुच्चयं रखा। माधवाचार्य ने भी दर्शन को दार्शनिक प्रणाली के रूप में देखा और 'सर्व दर्शन संग्रह' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। तब से किसी भी दार्शनिक प्रणाली के लिए 'दर्शन' शब्द का प्रयोग सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ।[1] 'शास्त्र' शब्द के दो अर्थ हैं – शासन करना एवं ज्ञान शंसन देना।[2] दर्शन शब्द के साथ शास्त्र का प्रयोग ज्ञान देने के अर्थ में है। यह शंसक अर्थात् बोधक शास्त्र है। धर्म के साथ शास्त्र का प्रयोग शासक अर्थ में है। धर्मशास्त्र हमें आचरण के सम्बन्ध में अनुशासित करता है जबकि दर्शन शास्त्र तत्त्व बोध करता है। दर्शन शास्त्र वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादक होने से वस्तु तत्त्व होता है।[3]

मानव मन में स्वयं एवं बाह्य जगत् को जाननेकी नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। मानव की मूल प्रवृत्ति दार्शनिक चिन्तन की है। वह जीवन एवं सत्ता के समग्र सत्य की खोज तथा उपलब्धि चाहता है। अपने और विश्व के विषय में प्रत्यक्ष, अनुभव, कल्पना, बोध, गुरू से प्राप्त ज्ञान या सत्संग के द्वारा वह कुछ दृष्टि (धारणा) बना लेता है। यही उसका दर्शन होता है। उसी के आधार पर वह अपना जीवन, मूल्य एवं दृष्टि निर्धारण करता है। प्रोफेसर के. एस. मूर्ति का मानना है कि अति प्राचीन समय से दृष्टि का अर्थ दार्शनिक सिद्धान्त या मत रहा है। दार्शनिक सभी हैं अन्तर कुशल और अकुशल दार्शनिक होने का है। हक्सले ने ठीक ही कहा कि मानव के लिए चुनाव

[1] प्रो. के. एस. मूर्ति: फिलॉसॉफी नई इण्डिया, प्रथम अध्याय

[2] शासनात् शंसनात् शास्त्र' शास्त्रमित्यभिधीयते।

[3] शंसनं भूत वस्त्वेक विषयं न क्रिया परम्।।

दर्शन और अदर्शन के बीच न होकर अच्छे एवं बुरे दर्शन के बीच होता है। मानव की स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि – वह केवल शरीरेन्रिय प्राण संघात मात्र है या और कुछ भी है। उसकी तात्विक स्थिति क्या है? इस सम्बन्ध में छान्दोगयोपनिषद् की एक रोचक एवं दार्शनिक कथा उद्धरणीय है जो कुशल एवं अकुशल दार्शनिक की बात स्पष्ट करेगी।

देवता एवं असुर प्रजाति की इस वाणी को सुनते आये थे कि जो आत्मा पाप से रहित, जरा रहित, मृत्यु से रहित, शोक से रहित, क्षुधा-तृषा रहित है, सत्य काम, सत्य संकल्प है, वह जानने योग्य है। जो आत्मा को जानकर उसका अनुभव प्राप्त करता है वह सब लोगों एवं भोगों को प्राप्त करता है।[4] देवों और असुरों में आत्मा को जानने की जिज्ञासा हुई। देवताओं ने इन्द्र और असुरों ने विरोचन को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना प्रतिनिधि बनाकर प्रजाति के पास भेजा। प्रजापति ने उन दोनोंको बतीस वर्ष की तपस्या के बाद उपदेश देने को कहा।[5] तपस्या के बाद प्रजाति ने उपदेश दिया कि दूसरों की और वने में देखने पर या जल में झॉंकने पर या दर्पण में देखने पर जो दिखाई देता है अर्थात् शरीर ही आत्मा है, अमृत है, अभय है, ब्रह्म् है।[6] विरोचन उस उपदेश को सुनकर सन्तुष्ट हो, चले गये और उन्होंने असुरों से इस मत का प्रतिपादन किया कि जीवित शरीर ही आत्मा है, जो आत्मा को पूजेगा, उसकी सेवा करेगा वह इस लोक और पर लोक दोनों को प्राप्त करेगा।[7] इस प्रकार विरोचन ने असुरों को देहात्यवाद का प्रख्यान किया। किन्तु इन्द्र प्रजापति के इस उपदेश से सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने अन्वय एवं व्यक्तिरेक से निश्चय किया कि यदि प्रतिबिम्ब आत्मा देहानुसारी है तो शरीर के अलंकृत होने पर अलंकृत होगा तथा इन्द्रिय विकल होने पर इन्द्रिय विकल होगा और शरीर के नाश होने पर उसका भी नाश होगा। ऐसी स्थिति में उत्पाद विनाशसील शरीर अमृतमय आदि गुणों वाला कैसे होगा? अर्थात् नहीं होगा।[8] इन्द्र पुन: जिज्ञासु बनकर गये और अपनी शंका प्रकट की। प्रजापति ने पुन: बतीस वर्षतक पर आने को कहा। तप के बाद प्रजापति ने उपदेश दिया कि जो पुरूष स्वप्न में मुक्त विचरण करते हुए दिखाई देता है वह आत्मा है।[9] पर इन्द्र ने विचार किया कि शरीरात्मवाद का दोष इसमें नहीं है पर स्वप्न में जान पड़ता है कोई मार रहा है, खदेड़ रहा है, अप्रिय प्रसंग में दु:खी हो रहा है, रो रहा है। इसलिए इस स्वप्नावस्था में भी कोई फल नहीं दिख रहा है। इन्द्र ने पुन: अपनी शंका प्रजापति के सामने रखी। प्रजापति ने पुन: बतीस वर्ष तप करके आने को कहा। आने पर प्रजापति ने उपदेश दिया कि – जब यह सोया हुआ सब तरह से शान्त होता है और स्वप्नादिका अनुभव नहीं करता, वह आत्मा है वही अमृत, अभय एवं ब्रह्म है।[10] इन्द्र ने पुन: विचार किया कि सुजाति अवस्था में आत्मा अपने को भी नहीं जानता कि यह मैं हूँ अन्य पदार्थों को भी नहीं जानता मानो इसका नाश ही हो जाता है। इस सुषुत्ति की आत्मा में

[4] छान्दोग्योपनिषद् 8/7/1

[5] तौ ह हातिंशत वर्षाणि बहमचर्यभूषतु:। छा. 8/7/3, तप से योग्यता का अर्जन होता है।

[6] एषो दाक्षिणि पुरूषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैत दमृतमभयम् ..... योडप्सु परिव्यापते पश्चायया दर्शे। छा. उ. 8/7/4

[7] शरीरमे वाल्मेति प्रजापतिना कथित:। तस्मत आत्मैव देह: एव मध्च्य: पूजयितुम् योग्य:। छा. उ. आनन्दभाष्य 8/8/4

[8] इन्द्रो हि अन्वय व्यतिरेकाम्याम् अवधारितवान .... उत्पाद विनाशसील स अमृतमय-त्वादि गुणक आत्मा कथं संभविष्यति। छा. उ. आनन्द भाष्य 8/9/1

[9] य एष स्वप्ने महीमानश्चरत्येष आत्मेति होवा चैतदमृतमयमय मेतद्ब्रहयेति। छा. उ. 8/10/1

[10] यद्यतैतत् सुत्त: समस्त: सप्रसन्न: स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति। छा. उ. 8/11/1

मुझे कोई फल नहीं दिखाई पड़ता ।[11] इन्द्र ने अपनी शंका पुन: प्रजापति को निवेदित किया। प्रजापति ने पाँच वर्ष तप करने को कहा। तपोपरान्त उपदेश दिया कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुत्ति तीनों अवस्थाओं में अभिव्यक्त चैतन्य शुद्ध आत्मा नहीं है अपितु आत्मा चैतन्य तुरीय, शुद्ध साक्षी, स्वप्रकाश और स्वत: सिद्ध है। उत्तम सभी अवस्थाओं का आधार है। जो यह समझता है कि –मैं सूँधूँ, उच्चारण करूँ, श्रवण करूँ जो विचारता है कि मैं मनन करूँ वही आत्मा है। उसके लिए मन रूपी दैवी नेत्र हैं।[12] जो पुरूष उस आत्मा को जानकर अनुभव करता है, वह सब लोकों और भोगों को पाता है।[13] तत्त्व दर्शन एवं अपने ऐश्वर्य को दिखाने के लिए भगवान ने अर्जुन को भी दिव्य नेत्र प्रदान किया क्योंकि भौतिक नेत्रों की गति परमतत्त्व तक नहीं है।[14]

यहां इन्द्र एवं विरोचन का उपाख्यान इसलिए दिया गया कि – पारूक यह समझ सके कि – दार्शनिक दृष्टि कैसे कुशल, अकुशल अथवा परिमार्जित एवं अपरिमार्जित होती है। विरोचन एवं इन्द्र इस बात के प्रतीक हैं कि – प्रत्येक व्यक्ति का दर्शन अलग-अलग होता है। अपनी तपस्या, साधना एवं योग्यता के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति अपना दर्शन निर्धारित करता है। विरोचन एवं इन्द्र से प्रारम्भिक स्तर पर बतीस वर्ष तपस्या की किन्तु दोनों में योग्यता का अन्तर रहा। विरोचन शरीरात्मवाद स्वीकार कर लेता है। इन्द्र भी प्रथम दृष्टि में इसे स्वीकार कर लेता है किन्तु उसका संस्कार, उसका चिन्तन इस स्वीकृति को नकारता है फिर प्रजापति के द्वारा क्रमश: स्वप्नावस्था के पुरूष एवं सुषप्तावस्था के पुरूष को आत्मा समझने का उपदेश पाता है किन्तु उसका चिन्तन फिर-फिर प्रश्न उठाता है, असन्तोष व्यक्त करता है, शंका करता है। तुरीयावस्था के रूप में आत्मा का उपदेश पाने पर उसका सारा सन्देह दूर हो जाता है, वह शंका रहित होकर उसे स्वीकार कर लेता है। यहां एक विषय और चिन्तनीय है कि आत्मज्ञान प्राप्त करने हेतु इन्द्र को एक सौ एक वर्ष तपस्या (साधना) कर अपने में आत्मज्ञान प्राप्त करने की योग्यता लानी पड़ती हैं।

दर्शन शास्त्र के प्रश्न मूलत: तीन तरह के हैं – विश्व का मूल तत्त्व क्या हैं?, इसका ज्ञान कैसे होता है? उसकी प्रामाणिकता क्या है?, और मुझे क्या करना चाहिए, मेरा नि:श्रेयस् और कर्तव्य क्या है? इन्द्री प्रश्नों पर क्रमश: तत्त्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा निर्धारित होती है, एक दृष्टि बनती है।

1.3 तत्त्वमीमांसा शब्द का अर्थ

मानव मन में उठने वाले कुछ स्वाभाविक दार्शनिक प्रश्न है। मैं कौन हूँ? कहां से आया हूँ? जिस जगत् में रहता हूँ उसका आदिकारण क्या है? वह आदिकारण क्या स्वयं अकारण है? जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? वह किसके सहारे स्थित है? वह प्रलय में कहां विलीन होगा? क्या आदि सत्ता पारमार्थिक है? यदि है तो उसका स्वरूप क्या है? वह भी विश्व के विशिष्ट पदार्थों की भांति है अथवा उससे भिन्न? उसकी संख्या कितनी है? मेरा पारमार्थिक् सत्ता से क्या सम्बन्ध है। जगत् की सत्यता का स्तर क्या है? क्या वह प्रातिमासिक है? व्यावहारिक है? या

[11] छा. उ. 8/12/4

[12] अथयो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोडस्य दिव्यंचक्षु। स वा एष दिव्येन चक्षुष मनसैतान कामान् पश्चन् रसते च एतेब्रह्म लोके। छा. उ. 8/12/5

[13] सर्वच कामा सर्वाच्च लोकानाप्नोति। छा. 8/12/6

[14] न तु मां शक्य से द्रष्टुमनैनैव स्व चक्षुषा। दिव्यम्ददामितेचक्षु: पश्य मे भोग मैश्वरम्। गीता 11/8

पारमार्थिक? इत्यादि प्रश्नों का सम्बन्ध तत्त्व मीमांसा से है। दर्शन की जिस शाखा में सत्ता के अस्तित्व एवं धर्म के सम्बन्ध में मूल भूत प्रश्नों की मीमांसा अथवा पारमार्थिक सत्य का विवेचन किया जाता है उसे तत्त्व मीमांसा की संज्ञा दी जाती है।

मैं अपने एवं जगत् को कैसे जानूँ? मेरा जानना कहां तक प्रामाणिक है? ये प्रश्न ज्ञान मीमांसा के हैं। मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? मुझे अपने लिए जीना है या संसार के लिए भी? ये प्रश्न आचार मीमांसा के हैं। ऐसे ही अनेक दार्शनिक प्रश्न उठते हैं जिनका समावेश इन्हीं तीनों में हो जाता है। भारतीय परम्परा में ये तीनों – तत्त्व की मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा आपस में जुड़े हुए हैं।

स्पष्ट है दर्शन का मूल तत्त्व मीमांसा ही है। चूंकि तत्त्व मीमांसा में मूल तत्त्व का अनुसन्धान होता है। अत: उसके सिद्धान्त सार्वमौय अथवा सर्व व्यापक होते हैं। तत्त्वमीमांसा उच्चतम व्यापकता का ज्ञान है। तत्त्व के निर्धारण होने के बाद ही मनुष्य अपना लक्ष्य निर्धारित करता है। विरोचन ने शरीर को ही आत्मा समझा तदनुसार असुरों को शरीर पोषण के लिए प्रेरित किया। इन्द्र ने इसे स्वीकार नहीं किया और शंका और जिज्ञासा करते-करते निरपेक्ष, शुद्ध-बुद्ध, साक्षी स्व प्रकाश स्वयं सिद्ध आत्मा का अनुसन्धान किया और तदनुकूल अपनी आचार मीमांसा निर्धारित की। सामान्य रूप से जो लोग, आत्मा, ईश्वर, लोक, परलोक की सत्ता स्वीकार नहीं करते (जैसे चार्वाक दर्शन) उनके जीवन का लक्ष्य खाओ, पीओ, मौज करो ही रहता है। जो लोग आत्मा की नित्यता एवं ईश्वर की सत्ता स्वीकार करते हैं वे धर्माचरण एवं मोक्ष को अपने आचरण का लक्ष्य बनाते हैं। अस्तु प्रत्येक व्यक्ति के लिए तत्त्व मीमांसा महत्वपूर्ण है।

मानव मन में तत्त्व को जानने की प्रबल जिज्ञासा होती है क्योंकि तत्त्व को समझे बिना वह अपने जीवन यापन की प्रविधि नहीं तय कर पाता। दर्शन इन तत्त्व विषयक जिज्ञासा को शान्त करता है, तात्विक प्रश्नों का समाधान करता है, उत्तर देता है। इसलिए तत्त्वमीमांसा के लिए दर्शन आवश्यक है। तत्त्वमीमांसा में दर्शन की यह ही भूमिका है।

दर्शन तत्त्वमीमांसा को जानने एवं समझने का माध्यम है। सामान्य तौर पर हमारे जानने का बाहय माध्यम ज्ञानेन्द्रियां (आंख, कान, नाक, त्वचा एवं जिहा) हैं। इनसे संसारके बाह्य पंच विषयों – रूप, शब्द, गन्ध, स्पर्श एवं स्वाद का ज्ञान होता है। परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है इसलिए वे बाहरी पदार्थों को ही जानने की चेष्टा करती हैं अपने अन्दर नहीं देखतीं।[15] आन्तरिक सुख-दु:ख आदि विषयों को अन्तरीन्द्रिय मन अपना विषय बनाता है। लेकिन इन्द्रियों की अपनी सीमायें है। दूर के पदार्थों को या व्यवधान युक्त पदार्थों को आंखे नहीं देख सकतीं। आंखों में विकार आने पर नहीं भी देख सकती। विकार युक्त होने पर कभी-कभी नजदीकी वस्तुओं को भी आंखे ठीक से नहीं देख पातीं। बहुत बार आंखे हमें धोखा देती हैं। सीधी लकड़ी जल में टेढ़ी दिखाई पड़ती है। समान आकार का सूर्य सुबह-शाम बड़ा और दिन में छोटा दिखाई पड़ता है। यही हास सभी इन्द्रियों का है।

ऐन्द्रिय अनुभव में यह सिद्ध होता है कि जो प्रतीति है; जो अनुभव में आता है वह सदैव यथार्थ अथवा सत्य नहीं हुआ करता। यथार्थ एवं प्रतीति के वैषम्य ज्ञान से तत्त्व मीमांसा प्रश्न यह भी उठता है कि – दृश्य जगत् प्रतीति मात्र है या सत्य है। सत्य और प्रतीति में क्या सम्बन्ध है? फिर इन्द्रियानुभव से अतिरिक्त भी कोई अनुभव है जो तत्त्व का यथार्थ रूप से हमारा साक्षात्कार

[15] पराञ्चि खानि व्यतृण त्स्वयं भू स्तमात्पराड् पश्यति नानारात्मन्। रूणोनिषा 2/1/1

करा सके। भारतीय दर्शन में ऐसी अनुभूति को स्वीकार किया गया है। यह अतीन्द्रिय अनुभूति है। ऐन्द्रिय अनुभूति में ज्ञाता-ज्ञेय का द्वैत सदा बना रहता है किन्तु अतीन्द्रिय अनुभूति में यह द्वैत मिट जाता है। यह अतीन्द्रिय अनुभूति योग दृष्टि या दिव्य दृष्टि कही जाती है जो कठिन साधना, गुरू कृपा या ईश्वर प्रसाद से प्राप्त होती है। इन्द्र विरोचन प्रजापति प्रसंग में सत्य के साक्षात्कार तक पहुँचने में इन्द्र को 101 (एक सौ एक) वर्ष की कठिन तपस्या करनी पड़ी। अर्जुन को दिव्य दृष्टि भगवान कृष्ण की कृपा से प्राप्त हुई। भगवान ने अर्जुन से कहा – कि तुम इन नेत्रों से युक्त वास्तविक रूप में नहीं देख सकते। इसलिए तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ।[16] रामकृष्ण जैसे सन्त एवं गुरू ने अपने प्रियशिष्य विवेकानन्द को निर्विकल्प समाधि तक पहुँचाना था। विवेकानन्द निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर चुके थे पर गुरू का आदेश था तुम्हें अपना मोक्ष ही अमीष्ट नहीं होना चाहिए तुम अपने मोक्ष और जगत् के हित के लिए कार्य करो।[17] ईश्वरस्योवनिषद् में सत्य के अवलोकन के लिए सूर्य से प्रार्थना की गयी है। ऋषि कहते हैं – आदित्य मण्डलस्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र (हिरण्यमय पात्र) से ढका हुआ है। हे पूजन् मुझ सत्य धर्मा को आत्मा की उपलब्धि के लिए उसे उपावृत कर (उधाड़) दे।[18]

यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि – सत्य आवरण से ढका है, सत्य का वास्तविक स्वरूप हमारे सामने नहीं है, सत्य निगूढ़ है। सत्य ज्ञान के लिए आवरण को हटाना आवश्यक है। दर्शन का मुख्य कार्य सत्याचेषण है, तत्त्वमीमांसा ही उसका अभीष्ट है क्योंकि तत्त्व के ज्ञान के बिना मुक्ति भी नहीं होती है। दर्शन के लिए तत्त्वमीमांसा लक्ष्य है, अन्य दार्शनिक प्रश्न तत्सापेक्ष हैं।

ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, ईश्वर तथा अपहत पाप्मा, अजर एवं अमृत आत्मा आदि तत्त्वमीमांसीय सत्ताएं हैं। इन सत्ताओं की मीमांसा दर्शन शास्त्र करता है। तत्त्वमीमांसा मात्र इनका ज्ञान ही नहीं प्राप्त करना, अपितु, इनके ज्ञान में उसे आत्मपूर्णता की प्राप्त होती है और आत्मपूर्णता की प्राप्ति मानव की महती मनोवैज्ञानिक प्रेरणा है।

भारतीय दर्शनों के अनुसार परमार्थ सत्ता की अनुमूति से क्षणभंगुर,परिवर्तनशील मानव जरा मरण अथवा माया मोह के वचनोंसे पार होकर मोक्ष, निर्माण अथवा ब्रह्म को प्राप्त करता है। तत्त्व मीमांसा का ज्ञान ऐसा है कि जीव का आध्यात्मिक रूपान्तरण हो जाता है। वेदान्त मत में वह साक्षात् ब्रह्म हो जाता है: ब्रह्मवेद वहममेव भवति।

1.3.1 भारतीय दर्शनों में तत्त्व मीमांसा

भारतीय दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसमें वैदिक-अवैदिक सभी दर्शन आ जाते हैं। वेद (संहिता), उपनिषद्, गीता षड् दर्शन आदि वैदिक दर्शनों के साथ ही चार्वाक, जैन एवं बौद्ध दर्शन को प्राय: करके इसके अध्ययन का विषय बनाया जाता है। यद्यपि कि – माधनाचार्य ने सर्व दर्शन सातहम पन्द्रह दर्शनों का समावेश किया है। लेकिन पाठ्यक्रम की इस इकाई के अध्ययन विस्तार को ध्यान में रखकर कुछ प्रतिनिधि दर्शनों की तत्त्व मीमांसा की चर्चा की जायेगी।

[16] गीता 11/8

[17] आत्यन: मोक्षार्थं जगद्धितापच।

[18] हिरण्यमयेन यात्रेण सत्य स्थापि हितं मुखम्। तत्वं पूषलपावृण्तुसत्य धर्माय दृष्टये। ईशउपनिषद् 15

पश्चिमी प्रभाव में अर्जुन मित्र जैसे कुछ विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद कालीन ऋषि पारिभाषिक रूप में दार्शनिक नहीं थे। उनमें जिज्ञासा की अपेक्षा विस्मय तथा चिन्तन की अपेक्षा कल्पना का ही बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। फिर भी दार्शनिक जिज्ञासा और चिन्तन के बीच जहाँ तहां बिखरे हुए मिल सकते हैं।[19] किन्तु मेरा अपना मानना है कि ऋग्वेद ही नहीं अन्य संहिताओं में भी मन्त्र द्रष्टा ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत आध्यात्मिक रहस्य भी यन्त्रों के रूप में प्रकट हुए हैं। तत्त्व मीमांसा के क्षेत्र में एकेश्वरवाद का स्वर वैदिक संहिताओं में स्पष्ट है। यद्यपि अनेक देवताओं की उपासना का प्रसंग है किन्तु मन को एक सत् के ही विभिन्न नाम समझा गया।[20] वैदिक देवतागण एक ही देवता के विभिन्न शक्तियों के प्रतीक हैं। देवताओं को 'असुर' अर्थात् प्राणवान बलवान अप्रतिहत सामर्थ्य माना गया है उनके असुरतव को स्पष्टतया एक ही स्वीकार किया गया है – यहद् देवानामसुरत्व मेकम – ऋग्वेद। पुरूष सूक्त में कहा गया कि – पुरूष ही है।[21] ठीक यही बात यर्जुवेद के पुरूष सूक्त में भी कहा गया है।[22] विश्वदेवा सूक्त में कहा गया है कि – आकाश, अन्तरिक्ष, माता-पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता सभी जातियां अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा वह सब अदिति रूप है।[23] ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में कहा गया कि सृष्टि के आदि में न सत् था न असत् था न वायु था न आकाश था .... न मृत्यु थी न अमरता, न रात थी न दिन था उस समय केवल वही एक था जो वायु रहित स्थिति में अपनी शक्ति से श्वास ले रहा था, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं था।[24] ऋग्वेद का हिरणयगर्म सूक्त गहरे आध्यात्मिक रहस्यों से भरा हुआ था। आनन्द रूप होने से अथवा इन्द्रियं रूप से अनिर्वचनीय होने के कारण हिरण्य गर्भ 'क' शब्द से व्यवहत हुये। यही हिरण्यगर्भ सर्व प्रथम उत्पन्न हुए और उत्पत्ति होते ही सब भूतोंके अधिपति हो गये।[25] इन्होंने आकाश और पृथिवी को अपने स्थान पर स्थित किया। जिन प्रजापति ने प्राणी को शरीर और बल प्रदान किया उसकी आज्ञा से सभी देव चलते हैं। मृत्यु भी उनके अधीन रहती है।[26]

विष्णु सूक्त में कहा गया है कि –विष्णु के पराक्रम को देखो जिनके बल से सभी नियम स्थित हैं।[27] विष्णु परम पदको ज्ञानीजन सदा अपने ह्दय में देखते है।[28] अथर्ववेद के स्कम्भ(10/3) एवं उच्छिपट (11/5) सूक्त में तत्त्व मीमांसा का एकेश्वरवादी स्वर स्पष्ट है। स्कम्भ सूक्त में प्रतिपादित है कि – उस अकाम, धीर, अमृत, स्वयंभू, रसतृप्य, अन्मून अजर आत्मा तत्त्व केअनुभव से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है।[29] उच्छिष्ट सूक्त में अच्छिष्ट नाम से ब्रह्म का

---

[19] अर्जुन मित्र: दर्शन की मूल धारायें पृ. 5

[20] इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निया हुरथो दिव्य: स सुपर्णो ग:त्मन्।

[21] पुरूष सूक्त ऋग्वेद 10190/

[22] पुरूष एवेदमं सर्वं भद् भूत यच्च भाव्यम्। यर्जुवद पुरूष सूक्ष्म

[23] अदिति जतियदितिर्जनित्वम्। ऋग्वेद 1/89/10

[24] अनीदवात स्वधयातदेक तस्माद्धान्यन्त पर: किंचिनास:। ऋग्वेद 10/129/2

[25] हिरण्यगर्भ: समवर्ततताग्र भूतस्य जात: पतिरेक आसीत। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविशा विधेम।। ऋग्वेद 10/121/2।

[26] .ऋग्वेद 10/121/2

[27] विष्णो: कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्परो। ऋग्वेद 1/22/9

[28] तद्विपणो: परमं पदं सदा पश्यन्ति सूक्त:

[29] अकामो धीरो डमृत: स्वयम्भू: रसेनन तृतोन कुतरचनोन:। तमेव विद्वान न विभाय मृत्यो रात्मान धीरयजांरयुवानम्।। अथर्ववेद 10/3/44

प्रतिपादन है। उच्छिष्ट का अर्थ है बचा हुआ, शेष पदार्थ; दृश्य प्रपंच के निषेध करने के अन्तर जो अवशिष्ट रहता है वही उच्छिष्ट है, अर्थात् बाधा रहित पर ब्रह्म।इस उच्छिष्ट पर नमा रूप जगत् आश्रित है, सारा लोक आश्रित है।[30] समस्त वेद पुराण अपान चक्षु स्रोत, अक्षिति (स्थिति) तथा क्षिति (लय), सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं। देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरायें और सब द्युलोक उच्छिष्ट से ही उत्पन्न हुए हैं।[31]

प्रजापति, पुरूष, हिरण्यगर्भ, विष्णु, अदिति, स्कम्भ, उच्छिष्ट सब एक ही परम तत्त्व के वाचक हैं। स्पष्ट है संहिता काल में एकेश्वरवाद की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। उपनिषदों के ब्रह्म तत्त्व या आत्म तत्त्व, तथा ब्रह्मात्मैक्यवाद के लिए संहिताओं के वर्णन पूर्व पीडिला हैं।

1.3.2 उपनिषद् दर्शन में तत्त्व मीमांसा

उपनिषदें भारतीय दर्शन के मूल स्रोत हैं। भारतीय दर्शन की कोई ऐसी प्रमुख विचारधारा नहीं है जिसका उद्गम उपनिषदों में न हो। उपनिषदों में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, एवं द्वैतपरक वाक्य हैं किन्तु उनका तात्पर्य अद्वैत के प्रतिपादन में है क्योंकि बाहुल्य अद्वैत श्रुतियों का है। उन्हीं को बारंबार प्रतिष्ठित किया गया है। फिर विशिष्टाद्वैत एवं द्वैतपरक वाक्यों को गौण मानकर उनकी संगति अद्वैत श्रुक्तियों के साथ हो जाती है। शंकराचार्य ने इसका स्पष्ट विशुद्ध एवं विस्तृत प्रतिपादन किया है।[32]

उपनिषदों की जिज्ञासा का प्रमुख विषय मूल तत्त्व को जानना है। वह तत्त्व जिस एक के जानने से सब कुछ जाना जाता है। छान्दोग्योपनिषद् में आरूणि अपने विद्यामिमाकी पुत्र से पूछते हैं कि – क्या तुम उस तत्त्व को जानते हो जिससे बिना सुना हुआ सुवा हुआ हो जाता है, बिना समझा हुआ समझा हुआ हो जाता है।[33] शौनक ने सभ्य पुरूषों से ऐसी कहावत सुनी थी कि – एक ही को जानने से मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है। उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा से वितर्क करते हुए मरवाज शिष्य अड़िगरा के पास जाकर विधिवत् पूछा – हे भगवान। किस वस्तु को जान लेने से यह सब विज्ञेय पदार्थ विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है।[34] इस मूल तत्त्व को उपनिषदों में आत्मा कहा गया है।

सृष्टि के आरम्भ में क्या था? इस प्रश्न पर उपनिषदों में स्थल-स्थल पर सत्[35], असत्[36] मृत्यु[37], आत्मा[38] और ब्रह्म[39] आदि नाम आये हैं लेकिन ये एक ही सत्ता के भिन्न-भिन्न हैं जैसाकि श्रुति परम्परा में कहा गया है कि – एक ही सत् को विद्वान, लोग भिन्न-भिन्न नामों से जानते है।[40] विश्व के परम तत्त्व को उपनिषदों में प्राय: ब्रह्म नाम दिया गया और उसे ही जिज्ञास्य

---

[30] उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहित:। अथर्ववेद 11/7/1

[31] उच्छिष्टाण्जातिरे सर्वे दिवि देवा विविज्ञिता:। अथर्ववेद 11/7/27

[32] च्रन्द्रधर शर्मा: भारतीय दर्शन आलोचना एवं अनुशीलन पृ. 6

[33] मेनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतमविज्ञातं विज्ञातमिति। छान्दोग्योपानिषद् 6/1/3

[34] कास्मेन्तु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति। मुण्डक उपनिषद् 1/1/3 एवं शंकर भाष्य।

[35] सदैव सौम्येदभग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्। छा. उ. 6/21/1

[36] अस द्वा इदभात आसीत्। तैत्रि. आरण्यक 7/1

[37] नैवेह किण्चाग्त आसीन्मृत्युनैवेदभावृतमासीद्। वृ. उ. 1/2/1

[38] आत्मैवेदभग्र। बृ. उ. 3/4/1; आत्मोवैदभग्र आसीदेव: एक:। बृ. उ. 1/4/7

[39] ब्रह्मवा इदयग्र आसीदेवतदेक: (वृ. उ. 1/4/11); एक मेवाद्वितीय ब्रह्म (छा. उ. 6/2/1

[40] एक सद्विप्रा: बहुधावदन्ति। ऋग्वेद 1/164/46

बताया गया। केन उपनिषद् का प्रारम्भ मन, वाणी के प्रेरक परम तत्त्व ब्रह्म की जिज्ञासा से होता है[41] और यही उसका प्रतिपाद्य है।[42] वृहदारण्यक उपनिषद् के एक प्रसंग में बालक्ति के यह कहने पर कि – मैं तुम्हें ब्रह्म विद्या सिखाउँगा अजात शत्रु ने मात्र इतना कहने के लिए एक हजार गाय दिया। विश्व इतिहास में ब्रह्म विषयक तीव्र जिज्ञासा का इस तरह का उदाहरण मिलना कठिन है। ब्रह्म सूक्त का प्रारम्भ भी 'अथाताद्ध ब्रह्म जिज्ञासा (1/1/1) कहकर ब्रह्म जिज्ञासा से हुआ है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्मविद ऋषि गण आपस में प्रश्न उठाते हैं और उसका समाधान चाहते हैं। प्रश्न इस प्रकार है – जगत् का कारण ब्रह्म कैसा है? हम किससे उत्पन्न हुए हैं? किसके द्वारा जीवित रहते हैं? कहाँ स्थित हैं? और हे ब्रह्म विद्गण हम किसके द्वारा सुख दु:खों में प्रेरित होकर व्यवस्था (संसार यात्रा) का अनुवर्तन करते हैं।[43] काल, स्वभाव य दृष्टा, भूत और पुरूष कारण हैं या नहीं? इस पर श्री विचार करना चाहिए। विचार पूर्वक काल आदि की कारणता का निषेध कर परमात्मा ब्रह्म की कारणता का निश्चय किया गया।[44] वरूण का पुत्र मृगु अपने पिता से ब्रह्म विद्या का वैध कराने के लिए कहते हैं।[45] पिता ने कहा जिससे निश्चय ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर जिसमें ये लीन हो जाते हैं, वहीं ब्रह्म है।[46]

उपनिषद् ब्रह्म या आत्मा को जगत् का निमित्तोपादान काल मानता है और इसके लिए मकड़ी के जाले का उदाहरण देता है। मकड़ी जाले के निर्माण की सामग्री (उपादान कारण) स्वयंसे उत्पन्न करती है और उसका निर्माण भी स्वयं करती है (निमित काय) उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति होती है।[47] वह ब्रह्म जगत् में व्याप्त है उपादान होने से और जगत् से परे भी है निर्मित होने से। ब्रह्म जगत् व्यापार (सर्जन, क्षम और लय) अपनी अचित्य शक्ति मापा के द्वारा करता है। जगत् सम्बन्ध से वह सगुण से विशेष है अन्यथा वह वास्तव में निर्गुण निर्विशेष है। मन, वाणी एवं बुद्धि का विषय नहीं है।[48] उसका सर्वोत्तम निर्वचन 'नेति-नेति' है।[49]

ब्रह्म जिज्ञासा उपनिषदों का प्रमुख विषय है पर उनकी जिज्ञासा का दूसरा विषय आत्मा है हालांकि आत्मा और ब्रह्म को एक ही माना गया है। नारद सनत्कुमार से शिक्षा ग्रहण करने जाते है संतत्कुमार के पूछने पर नारद अपनी पडिंत अनेक विद्याओं का नाम गिनाते है।[50] पर कहते हैं कि – मैं मन्तवित हूँ पर आत्मवित नहीं। आप जैसे विद्वानों के मुख से सुना हूँ कि आत्मवित शोक से पार हो जाता है। आत्रुभगवन् आप आत्मोपदेश देकर मुझे संसार सागर से पार करें।[51] यहां नारद की जिज्ञासा आत्म विषयक है। वृहदारणयकोपनिषद् में कहा गया है कि आत्मा ही द्रव्यव्य है, श्रोतव्य है और मत्रव्य है, आत्मा ही निद्धिध्यासन का विषय है। हे मैलेमी आत्मा के

---

[41] केनेषितं इत्याद्योपनिषद् पर ब्रहम विषया वक्तव्या। केन उ. 1/1 शंकराचार्य सम्बन्ध भाष्य।

[42] तदेवब्रह्म त्वं बिद्धि नेदं् यछिदमुपासते। केन उ. ¼ एवं उस पर शांकर भाष्य।

[43] कि कारण ब्रह्म कुत- स्म जाता जीवाम केन वच च सम्प्रतीष्ठा।

[44] श्वेताश्वर उप. ½-5

[45] भृगुर्वे वारूणि: पितामुपससार अधीहिभगवो ब्रह्मेति। तैत्तिरीय उप. 3/1

[46] यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते मेन जातानि जीवत्ति यत्प्रत्यन्म मिसंविशान्ति ब्रह्म। तैत्रि. 3/1

[47] यथोर्णनाभि: सृजतेगृह तैच तथा क्षरात्संभवती हविश्वम्र। मु. 1/1/7

[48] पतो वाचो निवर्तन्ते प्राप्य मनसा सह।

[49] अथातो आदेश नेति नेति।

[50] छान्दोग्योपनिषद् में पंडित विद्याओं की एक लम्बी सूची है। छा. उ; 7/1/10 द्रष्टस्य।

[51] सोद्रह भगवो मन्त्र विदेवास्मि ना डडत्यवित्। श्रुत हयेव में भगवद् दशेभ्य स्तराते शोकमात्मवित्। सोडहं भगवो शोचामि तं मा भगवाज्छो कस्य पारं तारयात्विति। छा. उ; 7/1/3

ही दर्शन, श्रवण और ज्ञान से यह सब विदित (ज्ञात) होता है।[52] जिस प्रकार दुन्दुभि, शंख एवं वीणा से उत्पन्न ध्वनियों को पकड़ने के लिए तत् तत् वाद्य यन्त्रों को पकड़ना पड़ता है वैसे ही विश्व को जानने के लिए आत्मा को जानना ही एक मात्र उपाय है।[53]

कठोपनिषद् में नचिकेता का मुख्य जिज्ञास्य आत्मा ही है। नचिकेता यमराज द्वारा अनेक प्रलोभनों को देने के बाद भी नचिकेता सभी को नकार कर आत्म जिज्ञासा को ही अपने वरदान का विषय बनाता है।[54] छान्दोग्योपनिषद् इन्द्र और विरोचन प्रजापति के पास आत्मोपदेश के लिए जाते हैं (पूरी कथा पूर्व वर्णित है)। ये सब प्रसंगयह स्पष्ट करते हैं कि – उपनिषदों के विचारों की परम तत्त्व सम्बन्धी जिज्ञासा का पर्मवसान आत्मा जिज्ञासा में है।

उपनिषद् तत्त्व दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है कि – ब्रह्म और आत्मा की एकता घोषित कर आत्मा को तत्त्व मीमांसा का एक मात्र विषय बनाता है। कंन उपनिषद् में कहा गया है कि जो मन से मन न नहीं किया जाता बल्कि जिससे (आत्मा से) मन मन न किया हुआ जाना जाता है उसी को तू ब्रह्म जान तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि। वह आत्मा तो सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म स्वरूप ही है। तुम उसी ब्रह्म को जानो।[55] शंकराचार्य केन उपनिषद्के ही एक स्थल पर भाष्य में लिखते हैं – वही आत्म स्वरूप ब्रह्म है, आत्मा को ही निर्विश ब्रह्म जानो।[56] ब्रह्दारण्यक उपनिषद् की उक्तिहै – यह आत्मा ही ब्रह्म है।[57] छान्दोग्योपनिषद् छठे अध्याय के आठवें खण्ड से लेकर सोलहवें खण्ड तक विविध उदाहरणों से समझाकर हर खण्ड के अन्त में कहा गया कि – 'हे श्वेत केतु तुम ही ब्रह्म हो।[58] यहां छान्दोग्योपनिषद् आत्मा और ब्रह्म की एकता स्थापित कर देता है। मुण्ड को पनिषद् ब्रह्मज्ञानी (आत्मा) ब्रह्म् हो जाता है[59] कह कर आत्मा और ब्रह्म में अभेद बतलाता है। ब्रह्म की ही भांति आत्मा को भी 'नेति-नेति' कहा गया है।[60]

उपनिषद्कार मानते हैं कि – तत्त्व ज्ञान के अति कत्व अमृत तत्त्व की प्राप्ति का कोई अन्य साधन नहीं है। ब्रह्म को जानने वाला सब प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है।[61] यह ज्ञान ही आत्मा और ब्रह्म की एकता का। उपनिषदों में दर्शन स्वयं साध्य नहीं तत्त्व ज्ञान का साधन है। स्वप्न है, उपनिषद् दर्शन का तत्त्व मीमांसा के क्षेत्र में अप्रक्तिम योगदान है।

1.3.3 सांख्य–योग दर्शन में तत्त्व मीमांसा

कपिल का सांख्य दर्शन और पतंजलि का योग दर्शन समान तन्त्र है। योग दर्शन सांख्य की तत्त्व मीमांसा को स्वीकार करता है किन्तु उसमें ईश्वर तत्त्व की वृद्धि कर देता है जो पुरूष-प्रकृति का संयोग कराता है। उसके ध्यान से समाधि निद्धि होता है – समाधि रिद्धि: ईश्वर प्राणिधानाश।[62]

---

[52] आत्मा वा अरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्त्रव्यो निदिध्मासितव्य .... विज्ञानेने द सर्व विदितम्। बृह. उ. 2/4/5

[53] बृह. उ. 2/4/6-9।

[54] वरस्तु ये वरणीय स एव स एव मदात्म विज्ञानम् शांकरभाष्य कठोपनिषद् 1/1/27; आत्मनां निर्णय विज्ञानं यत् तत् ब्रूहि कथय नो डस्यभ्यम्। कठोपनिषद् शांकरभाष्य 1/1/29

[55] निरतिशय ब्रह्म स्वरूपों हयात्मा विजिज्ञापयिषित:। शांकर सम्बन्ध भाष्य केन उप.।

[56] तदेव आत्म स्वरूप ब्रह्म; आत्मानमेव निर्विशेष ब्रहम विद्धि। केन उप. ¼ शांकरभाष्य।

[57] बृहदारण्य कोपनिषद् 2/5/1, 4/4/5

[58] तत्त्वमति श्वेत के तो:। छा. उ. अध्याय 6 खण्ड 8-16

[59] ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। मु. उ. 3/9/26

[60] नेति-नेति आत्मा। वृह. उ. 3/9/26

[61] आनन्द ब्रह्मणो विद्वान न विमेति कदाचनेति। ते. उ. 2/4

[62] योग सूक्त 2/45

इसलिए योग को सेश्वर सांख्य कहा जाता है।

सांख्य दर्शन की तत्त्व मीमांसा द्वैतवादी है। ये दो तत्त्व हैं – प्रकृति एवं पुरूष। दोनों का अस्तित्व एक दूसरे से निरपेक्ष हैं स्वभाव भिन्न है। पुरूष चेतन है, चैतन्य उसका स्वाभाविक गुण है, आकस्मिक नहीं (जैसा न्याय वैशेषिक मानता है) है। प्रकृति जड़ है। पुरूष निष्तैगुणय भोत्मा, निष्क्रिय, अपरिणामी, असामान्य एवं अनेक। इसके विपरीत प्रकृति त्रिगुणात्मिका, योग्य, सक्रिय, परिणामी (प्रसव धर्मो –उत्पपति कर्ता), सामान्य तथा एक है।[63]

पुरूष साक्षी केवल (पास विशुद्ध), मध्यस्थ अर्थात् तटस्थ या उदासीन ज्ञाता अर्थात शुद्ध चैतन्य रूप है। नित्य एवं अनेक है। अनेकता में सांख्य का तर्क है कि – पुरूषों में जन्म, मरण एवं इन्द्रिय भेद (कोई सकल है, कोई विकल्प है) है, प्रवृत्ति एक साथ नहीं है (कोई सोता है, कोई जागता है) और उनमें गुण भेद है कोई सात्विक है, कोई राजस तो कोई तामस रचनभावकन। अत: पुरूष अनेक है। सांख्य का यह तर्क संगत नहीं है क्योंकि जन्म, मरण, करण, प्रवृत्ति एवं गुण भेद सभी प्रकृति के तत्त्व हैं। आत्मा जन्म रहित, मरण रहित (नित्य होने से) शरीर एवं इन्द्रिय से भिन्न है। प्रवृत्ति भी आत्मा में नहीं है क्योंकि वह निष्क्रिय है।

सांख्य का दूसरा तत्त्व प्रकृति है। वह एक नित्य, जड़ और सदा परिणामी है। उसका लक्ष्य पुरूष के उद्देश्य साधन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सत्व, रज एवं तम – ये तीन गुण प्रकृति के उपादान हैं।

सत्व गुण लघु एवं प्रकाशक है, इष्ट है, रजोगुण उत्तेजक एवं चण्चल है तमोगुण भारी आवश्यक एवं अवरोधक है। सत्व की अधिकता से सुख, रजोगुण की अधिकता से दु:ख एवं तमोगुण की अधिकता से मोह की स्थिति होती है। गुणों का परम रूप दृष्टिगत नहीं होता।[64] प्रकृति की दो अवस्था होती है 1) साम्यावस्था और 2) विक्षोभवस्था। साभ्यावस्था में सभी गुण अलग-अलग एक दूसरे से निरपेक्ष अपने आप में क्रियाशील रहते हैं। विक्षोभावस्था में एक गुण दूसरे को दबाना चाहता है इसी अवस्था में सृष्टि प्रारम्भ होती है। यह विक्षोभावस्था पुरूष के संसासि पंग्वन्धन्याय से होती है। पंगु चल नहीं सकता, अन्धा देख नहीं सकता पर अन्धा पंगु को कन्धे पर बैठा ले तो दोनोंगन्तव्य तक पहुंच सकते हैं। पुरूष निष्क्रिय (पंगु) पर चेतक है, प्रकृति अन्ध (जड़) किन्तु सक्रिय है। किन्तु इस व्याख्या में दोष है पंगु और अन्ध दोनों चेतन हैं पर यहां एक चेतन और दूसरा जड़ है। दो चेतन योजना बना सकते हैं पर एक जड़ और दूसरा चेतन योजना नहीं बना सकते। सांख्य पुन: कहता है प्रकृति को पुरूष संसारिका आभास होता है तब तो सृष्टि आभासी होगी पर सांख्य सृष्टि वास्तविक मानता है। यहां अधिक तर्क का अवकाश नहीं है। पुरूष-प्रकृति के संयोग से विक्षोभावस्था में सत्व की अधिकता से पहले महत् (बुद्धि) तत्त्व की उत्पत्ति होती है। उससे अंहकार होता है। अंहकार में सत्व की प्रचुरता में पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय एवं मन की उत्पत्ति होती है। तान की प्रचुरता से शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध-पंच तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। इन पंच तन्मात्राओं से पंच सूत्रों की उत्पत्ति होती है।[65] प्रकृति एवं तण्चन्य विकारों की संख्या 24 है। पुरुष को लेकर यह संख्या पच्चीस हो जाती है।

---

[63] त्रिगुणम विवेकि विषय: सामान्यमचेतनं प्रसव धर्मि। व्यक्त तथा प्रधानंतहिद्वपरोत स्त्था जुमान्। (सांख्य कारिका 11)

[64] गुणाना परमं रूप न दृष्टि पंचमृच्छति। पाष्टि तन्त्र

[65] प्रकृतेर्म हान महतोडहंकार: तस्मात् गणश्च षोडषक:षक:। तस्मादपि षोडशकाद् पंचम्य: पंच भूतानि।

पुरूष अविद्या के कारण अपने को शरीर, इन्द्रिय, मन आदि प्रकृति जन्य विकारों से पृथक् नहीं समझा और विविध दु:खों से पीड़ित होता है। ज्ञान के द्वारा जब वह अपने को प्रकृति से अलग समझता है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

1.3.4 न्याय दर्शन में तत्त्व मीमांसा

न्याय दर्शन के प्रधान आचार्य गौतम हैं जिन्होंने न्याय सूत्र की रचना की जिस पर विस्तृत टीका वात्स्यायन ने की है। न्याय तत्त्व मीमांसा में प्रमेय के बारह भेद स्वीकार किये गये है[66] - आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव (पुनर्जन्म) फल, दु:ख तथा अपर्ना।

इन्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दु:ख और ज्ञान आत्मा के लिंग (चिन्ह) है। जीवात्मा प्रयत्न वाला होने से कर्ता माना गया है, सुखी दु:खी होने के कारण भोत्मा तथा ज्ञान वाला होने अनुभवी है। ज्ञान उसका आगन्तुक गुण है। जब आत्मा मन तथा इन्द्रियों के माध्यम से विषय के संपर्क में आता है तब उसमें चैतन्य या ज्ञान उदय होता है। आत्मा ज्ञातृत्व, कर्तृव्य, भक्तित्व आदि धर्म इसमें तभी संभव हैं जब वह शरीरावच्छिन्न हो। मुक्त होने पर जीवात्मा इन संपर्कों रे रहित हो जाता है तो ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। इन्द्र, मिथ्या ज्ञान, रागद्वेष तथा मोह से प्रेरित आत्मा अच्छे और बुरे कर्म करता है और संसार चक्ररों फंसा रहता है। तत्त्व ज्ञान के जब सारे दु:खों से उसकी मुक्ति होती है तो उसे अपर्क्षा की अवस्था कहते हैं। इसमें सुख और दु:ख का कोई अनुभव नहीं होता।

न्याय तत्त्व मीमांसा में आत्मा का दो विभाजन है – जीवात्मा एवं परमात्मा। जीवात्मा अनित्य, साख्यीय, अपूर्ण एवं अल्पज्ञ है इसके विपरीत परमात्मा नित्य, असीम, पूर्ण एवं सर्वज्ञ है। जीवात्मा शरीरवस्था में बन्धन में पड़ता है परन्तु ईश्वर नित्य मुक्त है। ईश्वर परम पिता, जगलियन्ता जगदीशवर है। उसमें आधिपतय वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य छ: गुण है। वह लोक निर्माता आनन्द मूर्ति व कृपाधाम है। वह कलेश, कर्म, विपाक आदि से रहित पुरूष विशेष है।[67]

न्याय दर्शन ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द - तीन प्रमाण देता है। ईश्वर अलौकिक प्रत्यक्ष द्वारा सिद्धों द्वारा प्रत्यक्ष है। ईश्वर सिद्धि में उदयनाचार्य का प्रसिद्ध तर्क है – कार्यायोजन घृत्माडे: पदात् प्रत्ययत: श्रुते।

वाक्यात् संख्या विशेषाच्च साध्यो विश्व बिदव्यय:। न्याय कुसुमाजलि प्र. स्ववम 5/8 जगत् एक कार्य है इसके निर्मित कारण के लिए परमाणुओं में आद्यस्पन्दन हेतु, जगत् के धारण एवं संहार के लिए जिस सत्ता की आवश्यकता है वह ईश्वर है। पदों में अर्थ की अभिव्यक्ति की शक्ति, तथा वेद का प्रामाण्य तद्वचन होने से ईश्वर सिद्ध है। श्रुति ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन करती है, वेद ईश्वर वाक्य हैं जिनमें कर्तव्याकर्तव्य का निरूपण है। द्वयणुय का परिमाण दो अणुओं की संख्या से होता है। संख्या का प्रत्यय चेतन ईश्वर से सम्बद्ध है। जीवों के शुभाशुभ कर्मो का आगार अदृष्ट हैं। ये अदृष्ट जड़ होने से फल भोग नहीं करा सकते। यह दृष्ट के संचालन के रूप में सर्वज्ञ ईश्वर की सतता सिद्ध होती है।

नैयायिकों के विपरीत वेदान्तियों का मानना है कि ईश्वर तर्क का विषय नहीं है। उसके पक्ष की तरह विपक्ष में तर्क दिये जा सकते हैं। ईश्वर का प्रमाण केवल श्रुक्ति है।

---

[66] न्याय सूक्त 1/1।9

[67] स देवो परमो ज्ञाता नित्यानन्द: कृपान्वित: क्लेशकर्म विपाकादि परामर्श निर्वशित:। जयन्त भट्ट।

1.3.5 वैशेषिक दर्शन में तत्त्व मीमांसा

वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कणाद् हैं जिनका ग्रन्थ है – कणाद् सूक्त। इस पर प्रशान्त पाद की पदार्थ धर्म संग्रह नामक टीका है। इस टीका ग्रन्थ की उदयनाचार्य की किरणावरनी तथा श्रीघरा चार्य की न्याय कन्दत्नी दो टीकायें है।

वैशेषिक तत्त्व मीमांसा में पदार्थ निरूपण एवं परमाणु कारण वाड दो प्रमुख स्थापना में हैं। पदार्थ का लक्षण है – अभिधेयत्व एवं ज्ञेयतव। अर्थात् पदार्थ वह है जिसको नाम दे सकें और जान सकें। वैशेषिक तत्त्व मीमांसा भेद मूलक वहुत्ववादी वस्तुवाद है। कणाद् सूक्त में छह भाव पदार्थों का उल्लेख है[68] - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष एवं समवाय। बाद के वैशेषिकों ने अभाव को भी एक पदार्थ को मान्यता दी।

द्रव्य – द्रव्य वह है जो गुण तथा कर्म का आश्रय हो और अपने कार्य का समवायी कारण हो।[69] द्रव्यों की संख्या नौ है – पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिरू, आत्मा एवं मन। इनमें प्रथम पांच पंचसूक्त कहलाते हैं और इनमें कोई विशेष गुण पाया जाता है। पृथ्वी का विशेष गुण गन्ध, जल का रस, तेज का रूप, वायु का स्पर्श तथा आकाश का शब्द गुण है। चार भूतों का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों से होता है किन्तु आकाश का कर्णन्द्रिय से उसके शब्द गुण के द्वारा अनुमान से होता है।

पृथिवी, जल, अग्नि तथा वायु क्रमश: चार प्रकार के परमाणुओं से बने हैं। ये परमाणु भौतिक हैं। इनका विभाजन तथा नाश नहीं होता। सबसे छोटे टुकड़े को जिनका और अधिक विभाजन नहीं हो सकता परमाणु कहते हैं।[70] भूतों के परमाणु कारण रूप में नित्य एवं शाश्वत हैं। इनमें आद्यस्पन्दन ईश्वेच्छा से होता है। दो परमाणुओं के संभोग से द्वयणुम निर्मित होता है। तीन ध्यणुओं से त्रसरेणु की उत्पत्ति होती है। ये चाक्षुष प्रत्यक्ष के विषय बनते हैं।[71] चार त्रसरेणु से चतुरणुम और इसी क्रम से स्थूल तत्वों की उत्पत्ति होती है।

काल एवं दिक् अगोचर नित्य एवं विभु हैं। भूत, वर्तमान, भविष्य, ज्येष्ठ कनिष्ठ आदि के ज्ञान का आधार काल तथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उपर, नीचे दूर-पास आदि का आधार आकाश है। आत्मा अनेक, नित्य, स्वतन्त्र एवं विभु है। आत्मा इस गुण का आश्रय है पर ज्ञान उसका आगन्तुक गुण है। मन अन्तरोन्द्रिय, नित्य, अणु तथा अनेक है पर पृथिव्यादि के परमाणुओं की तात संघाल नहीं बनाता। मन के अणु होने से एक समय में एक ही पदार्थ का ज्ञान होता है।

गुण – गुण का लक्षण है – द्रव्याज्तित्व, निर्गुणत्व एवं निष्क्रियत्व।[72] गुण द्रव्यजित होने पर निर्गुण (गुण का गुण नहीं होता) और निष्क्रिय होता है। कणाद् ने सत्रह गुणों का उल्लेख किया है। प्रशान पाद ने सात गुणों को जोड़कर इनकी संख्या चौबीस कर दी। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संयोग वियोग बुद्धि, सुख, दु:ख, इच्छा, द्वैष, प्रयत्न आदि प्रमुख गुण हैं।

कर्म – कर्म मूर्त द्रव्यों के सक्रिय धर्म हैं जिनके कारण संयोग एवं विभाग होता है। उत्क्षेपण (उपर फेंकना) अवक्षेपण (नीचे फेंकना) आकुण्चन (सिकोड़ना), प्रसारण (फैलाना) और गमन

---

[68] कणाद् सूक्त 1/1/14

[69] क्रियागुणवत् समवामिकारणं द्रव्यम्। कणाद् सूक्त 1/1/5

[70] परमत्व विशिष्टे ध्यणु: परमाणु:। न्यायवर्तिक तात्पर्य दीपिका।

[71] द्रव्याज्तत्व द्रव्याज्रयी गुणवान् सयोगवियोगेण्कारणमनपेक्ष इति गुण लक्षयम्। कणाद् सूक्त 1/1/16

[72] द्रव्याजतयत्व द्रव्याज्रयी गुणवान् संयोग वियोगेष्काराणमनपिक्षइति गुणलक्षणम्। कणाद् सूक्त 1/1/16

– ये पांच प्रकार के कर्म हैं।[73]

सामान्य – नित्य एक और अनेकानुगत को सामान्य कहते हैं।[74] सामान्य को जाति भी कहते हैं। यह किसी वर्ग के सभी सदस्यों में समवाय सम्बन्ध से वियमान रहता है। जैसे मनुष्यत्व सभी मनुष्यों में अनुगत है। सामान्य की वास्तुगत सत्ता है। जो सबसे अधिक व्यापक हो उसे पर सामान्य कहते हैं, जैसे सत्ता। कम व्यापक को उपर सामान्य कहते हैं, जैसे मनुष्यत्व।

विशेष – नित्य द्रव्यों के पार्थक्य के मूल कारण को विशेष कहते हैं। ये परमाणु नित्य द्रव्यों में रहते हैं।[75] इन्हीं से नित्य द्रव्यों के एक परमाणु से दूसरे परमाणु का भेद होता है जैसे – पृथ्वी के एक परमाणु दूसरे परमाणु से विशेष के कारण ही मिल है। नित्य द्रव्यों में रहने वाले विशेष स्वयं नित्य हैं। ये अनन्त हैं क्योंकि नित्य द्रव्य अनन्त हैं।[76] विशेष को मानने के कारण ही इस दर्शन का नाम वैशेषिक पड़ा।

समवाय – समवाय दो वस्तुओं में रहने वाला नित्य अपृथक सिद्ध सम्बन्ध है। अभुत सिंह दो वस्तुओं को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इनमें एक आधार होता है और दूसरा आधार्य।[77] द्रव्य एवं गुण में, द्रव्य और कर्म में, सामान्य और विशेष में नित्य द्रव्य और विशेष में, अवयवी तथा अवयवों में समवाय सम्बन्ध होता है।

अभाव – अभाव पदार्थ सापेक्षता के सिद्धान्त पर आधारित होता है। किसी वस्तु का न होना अभाव कहा जाता है जैसे रात्रि आकाश में सूर्य का अभाव। अभाव चार प्रकार का होता है – प्रागभाव, प्रध्वंशायाब, अत्यन्ता भाव तथा अन्योन्या भावा। उत्पत्ति के पूर्व कारण में कार्य का अभाव प्रागभाव है जैसे घर निर्माण पूर्व मिट्टी में घर का अभाव। प्रध्वंशा भाव विनाश के बाद वस्तु का अभाव है जैसे घड़े के फूटने पर उसके टुकड़ें में घड़े का अभाव। अत्यन्ताभाव त्रिकाल अभाव है जैसे वायु में रूप का अभाव। दो वस्तुओं का परस्पर भेद होने से एक में दूसरे का अभाव अन्योनयाभाव है, जैसे घर में पर का अभाव।

1.3.6 मीमांसा दर्शन में तत्त्व मीमांसा

मीमांसा – बाह्य सत्तावादी है। यह भौतिक जगत् एवं आत्माओं की सत्ता स्वीकार करती है। किन्तु यह किसी जगत् सृष्टा ईश्वर को नहीं मानती जगत् अनादि तथा अनन्त है न इसकी कभी ाभासृष्टि हुई और न प्रलय होगा। सांसारिक वस्तुओं का निर्माण आत्माओं के पूर्व अर्जित कर्म के अनुसार भौतिक तत्त्वों से होता है। व्यक्ति के कर्म करने पर एक शक्ति की उत्पत्ति होती है। कर्म की उस शक्ति को 'अपूर्व' कहते हैं। इसे न्याय-वैशेषिक अदृष्ट कहता है। अपूर्व के कारण ही किसी भी कर्म का फल भविष्य में उपयुक्त अवसर पर मिलता है। किसी कर्मफल प्रदाता की आवश्यकता नहीं है। मीमांसा में ईश्वर का स्थान अपूर्व ने ले लिया।

वेदान्त दर्शन में तत्त्व मीमांसा – वेदान्त की तत्व मीमांसा प्राय: वही है जो उपनिषदों की है। उपनिषदों के विचारों को संकलित कर एवं उसके मन्त्रों के आपसी विरोध का सामण्जस्य कर वादरायण व्यास ने ब्रह्म सूक्त की रचना की। ब्रह्म सूक्त पर शंकर, रामानुज, मध्व, निम्बार्क

[73] कर्माण्येतानिपंचच।

[74] नित्यमेकानुगतं सामान्यम्। तर्क संग्रह

[75] स्वाग्रयविशेषत्वात् विशेषा:। प्रशस्त्र पाद भाष्य

[76] नित्य द्रव्य वृत्तयो व्यावर्तका विशेषा स्त्वनन्ता एव।

[77] अयुत सिद्धानायाधार्याधारभूतानां य: सम्बन्ध: स समवाय:। कणाद् सूक्त 1/1/3 एवं प्रशस्त पाद भाष्य

वल्लभ आदि अनेक आचार्यों ने भाष्य किया। उपनिषद् ब्रह्मसूक्त एवं भगवदगीता वेदान्त के तीन प्रस्थान हैं जिनके आधार पर भाष्यकारों ने अपनी-अपनी तत्त्व मीमांसा का महल खड़ा किया, उनमें शंकराचार्य एवं रामानुजाचार्य प्रमुख हैं।

1.3.7 शंकराचार्य के वेदान्त में तत्त्व मीमांसा

शंकराचार्य के अनुसार वेदान्त की वेदान्त की तत्त्व मीमांसा विशुद्ध अद्वैतवाद है। ब्रह्म या आत्मा की मूल सत्ता है, पारमार्थिक है, अन्य सब कुछ या तो प्रातिभासिक है या व्यावहारिक। श्रुक्तियां नानात्व का निषेध करती हैं। एकत्व पर बल देती हैं। उपनिषदों में जहां भी सृष्टि पूर्व सत्ता का उल्लेख है उसे वहां एक मेवा द्वितीय कहा गया है। ये सभी प्रकरण उपनिषद् तत्त्व मीमांसा में आ चुके हैं।

पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता है। वह स्वरूपत: सत्य ज्ञान और अनन्त है। वह सच्चिदानन्द है। विज्ञान धन है। वह निर्गुणनिरविशेष, चैतन्य सत्ता मात्र है। किन्तु जगत् की दृष्टि से वह सर्वगुण सम्पन्न जगत् सर्जक, पालक एवं संहारक है। यह उसका सगुण रूप वस्तुत: मायिक है, अयथार्थ है।

ब्रह्म सजातीय (जैसे एक मनुष्य का दूसरे से भेद) बि जातीय (जैसे गाय घोड़े का भेद एवं स्वगत (शरीर एवं उसके अंगों का भेद) भेदों से रहित है क्योंकि कि वह एक अद्वितीय एवं चैतन्य सत्ता है। वह प्रत्यक्ष एवं संभावित विरोधों से भी परे है। प्रत्यक्ष विरोध में एक प्रतीति दूसरी वास्तविक प्रतीति से खण्डित होती है जैसे रस्सी (अधिष्ठान) के ज्ञान से प्रकाश पूर्व उसमें अनुभूत सर्व ज्ञान का खण्डित हो जाना। संभावित विरोध में सत्ता युक्ति द्वारा बाधित होती हैं। जैसे परिवर्तन असत्य है क्योंकि इसका खण्डन युक्ति से होता है। मूल सत्ता ब्रह्म परिवर्तनों से परे और त्रिकाला बाधित है अत: उसमें न प्रत्यक्ष विरोध है न संभावित।

उपनिषदों एवं वेदों में संसार सृष्टि की तुलना इन्द्र जाल से की गयी और ईश्वर को मायावी कहा गया है। ईश्वर अपनी माया शक्ति से संसार का सर्जन करता है, लेकिन यह सृष्टि वास्तविक नहीं है। रस्सी अंधेरे में सांप दिखाई देती है किन्तु प्रकाश होने पर अधिष्ठान रूप रस्सी ही रहती है। भ्रम वश हम प्रकाश पूर्व सांप समझे रहते हैं, वैसे ही अधिष्ठान ब्रह्म में माया जगत् का दर्शन कराती है। एक जादूगर अपनी जाइ से एक मुद्रा को कई मुद्राओं में परिणत हुआ दिखाता है। जो उसके जादू को नहीं जानते उनके लिए यह सत्य है किन्तु जो जादूगर के जादू को जानता है उसके लिए यह मात्र एक धोखा है। वह जादूगर भी नहीं है और धोखा देने की कला भी नहीं है। वैसे ही जब मनुष्य विश्व को पूर्णतया ब्रह्ममय (अधिष्ठान) देखता है, उसके लिए ब्रह्म में माया या सृष्टि शक्ति नहीं रहती और न ही सृष्टि का सत्यत्व रह जाता है। उसके लिए ब्रह्म सत्य एवं जगत् मिथ्या हो जाता है।

वेदान्त में आत्म तत्त्व की जिज्ञासा एवं महत्व पर विशेष बल दिया गया है। आत्मा को ही श्रवण मनन्त एवं निद्धिध्यासन के योग्य बताया गया है। उपनिषद् तत्त्व मीमांसा में विस्तार से चर्चा किया गया है।

वेदान्त आत्मा और ब्रहम दोनों को एक ही सत्ता के दो नाम मानता है (देखें उपनिषद् तत्त्व मीमांसा) गुरू शिष्य को विभिन्न उदाहरणों से समझा कर आत्मा एवं ब्रह्म के एकत्व को बतलाता है और कहता है – 'तत्त्वमतिश्वेतकेतो' हे खेतकेट वह ब्रह्म तुम हो। शिष्य कह उठता है – अहं ब्रह्मामि' मैं ही ब्रह्म हूं। ब्रह्मात्यैक्य ज्ञान ही वेदान्त में मुक्ति का मार्ग है।

1.3.8 रामानुज वेदान्त में तत्त्व मीमांसा

रामानुज वेदान्त दर्शन में तत्त्व मीमांसा सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत है। रामानुज चित्, अचित् एवं ईश्वर इन तीन तत्वों को मानते हैं। चित् चेतन मोत्मा जीव है; अचित् जड़ योग्य जगत्। ईश्वर दोनों का अन्तर्यामी है। चित् एवं अचित् दोनों नित्य एवं परस्पर स्वतन्त्र द्रव्य हैं किन्तु दोनों ईश्वर पर आश्रित हैं और सर्वथा उसके अधीन हैं। दोनों स्वयं में द्रव्य हैं किन्तु ईश्वर के गुण धर्म हैं। दोनों ईश्वर के शरीर है और ईश्वर उनका अन्तर्यामी आत्मा है। रामानुज के अनुसार शरीर वह है जो आत्मा द्वारा धार्य, नियाक्य और शेष हो। आत्मा धर्तृता, नियत्रा एवं शेषी है। सभी चेतन एवं अचेतन परम पुरूषद्वमा नियाग्य, धार्य एवं शेष होने के कारण उनका शरीर है।[78] ईश्वर चिदचिद्विशिष्ट है।[79] चिदाचिद् ईश्वर के विशेषम धर्म, गुण, प्रकार, अंश, अंग, शरीर, नियाम्य, धार्य और शेष हैं तथा ईश्वर उनके विशेषय, धर्मो, द्रव्य, प्रकारों, अंशी, अंगी, शरीरी (आत्मा) नियत्रा, धर्ता एवं शेषी है। चित् और अचित् भी नित्य हैं पर ईश्वर से बाह्य एवं पृथक् नहीं। ब्रह्म सृष्टि दशा में स्थूल चिदाचिद्विशिष्ट तथा प्रलय दशा में सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट रहता है किन्तु सदा विशिष्ट ही रहता है और एक है।[80]

ईश्वर में सजातीय एवं विजातीय भेद नहीं है क्योंकि ईश्वर के समान या भिन्न कोई स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है किन्तु ईश्वर में स्वगत भेद विद्यमान है क्योंकि उनका शरीर नित्य एवं परस्पर मिल चित् और अचित् तत्वों से निर्मित है।

ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है वह अनन्त गुणाकर है किन्तु उसमें हेय गुणों का अभाव है।[81] ईश्वर चिदचिद से इस संसार की उत्पत्ति उसी प्रकार की है जिस प्रकार मकड़ा अपने शरीर से अपने जाले की उत्पत्ति करता है। यह जगत् ईश्वर का परिणाम एवं वास्तविक है। ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता तथा हर्त्ता है अचित् एवं चित् (जीवात्मा) सदा ईश्वर में विद्यमान है, अणु है तथा स्वभाव चिन्मय है। कर्मानुसार प्रत्येक आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है। सृष्टि दशा में चित् अचित् व्यत्म या सथूत् रूप धारण कर लेते हैं और प्रलयावस्था में सूक्ष्म रूप में ईश्वर के अंश के रूप में रहते हैं।

आत्मा अपने कर्मानुसार शरीर धारणा करता है, अचित् विशिष्ट होता है और यह उसका बन्धन है। वह अपने शरीर को समझ नहीं पाती और शरीर को अपना स्वरूप समझती है। विषयासत्म में निमग्न होकर फिर-फिर जन्म और मरण के चक्र में फँसी रहती है। जब साधना एवं गुरू कृपा द्वारा वेदान्त ज्ञान से उसे ज्ञात होता है कि वह शरीर से भिन्न ईश्वर का अंश है तब वह अनासत्म भाव से वेद विहित धर्मों का आचरण करता है और ईश्वर की उपासना कर अपने को ईश्वर में अर्पित कर देता है। ईश्वर उसकी भक्ति एवं प्रपत्ति से प्रसनन होकर उसे बन्धन मुक्त कर देते हैं। वह वेदान्त के बाद जन्म ग्रहण नहीं करता और ईश्वर के धाम को प्राप्त होता है।

---

[78] सर्व परम पुरूषेण सर्वात्मना स्वार्थ नियाम्यं धार्यं तच्छेषतैक स्वरूपं इति सर्वंचेतना चेतनं तस्य शरीरम। श्री भाष्य 2/1/9

[79] चिद चिद्विशिष्ट ईश्वर:।

[80] सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मण तदानीं सिद्धखात् विशेष्यैव अद्वितीय पखं सिद्धम। वेदान्त सार भाष्य

[81] ब्रह्म शब्देन स्वभावतो निररात्रानिविल दोषा नवधिकाशक्तिशय असंख्येम कल्याण गुणाकर पुरूषोत्तम: 1/1/1

1.4 सारांश

दर्शन साक्षात्कार और तत्त्व बोध का माध्यम है। दर्शन की अनेक शाखाओं में जिस शाखा में सत्ता के अस्तित्व एवं धर्म के सम्बन्ध में मूल भूत प्रश्नों की मीमांसा तथा पारमार्थिक सत्य का विवेचन किया जाता है उसे तत्त्व मीमांसा की संज्ञा दी जाती है। तत्त्व मीमांसा के प्रश्न अति सामान्य होते हैं। उनका अध्ययन विज्ञानों में नहीं होता। उनका अध्ययन दर्शन में होता है। विभिन्न दर्शनों में तत्त्व मीमांसीय प्रश्नों को अपने-अपने ढंग से सुलझाया जा गया है।

संहिताओं (वेदों) में जहां सृष्टि का प्रसंग है उसके मूल में एक ही सत्ता का उल्लेख है। स्थल भेद में उसे पुरूष, हिरण्यगर्भ, प्रजापति, आदित्य, एकम्भ, उच्छिष्ट आदि अनेक नाम से दिये गये हैं और स्पष्ट घोषणा है कि एक सत् को ही विद्वान लोग भिन्न–भिन्न नामों से पुकारते हैं। उपनिषद् तत्त्व मीमांसा में भी यही दृष्टि देखने को मिलती है। सृष्टि पूर्व सत्, असत्, मृत्यु आत्मा, ब्रह्म, आदि के होने का स्भत्व में इसे प्रसंग प्राप्त होता है। लेकिन संहिताओं की तरह यहां भी उसे एक मेवाद्वितीयम् कहा गया है। उपनिषदों में जिज्ञासा का विषय प्राय: ब्रह्म और आत्मा को बताया गया है और दोनों को एक कहा गया है। उस एक के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है। वही जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं लय का कारण है। वह विश्व में व्याप्त भी है और परे भी है।

सांख्य-योग की तत्त्व मीमांसा द्वैतवादी है जिसमें दो मूल तत्त्व है – पुरूष और प्रकृति। प्रकृति जड़ और एक है पुरूष चेतन और अनेक है। प्रकृति एवं पुरूष के संयोग से सृष्टि की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। प्रकृति से महत् और महत् से अंहकार की उत्पत्ति होती है। सात्तिक अंहकार से मन एवं दस इन्द्रियां और ताम अंहकारिक पंच तन्मात्ताओं की उत्पत्ति होती है और पंच तन्मात्ताओं से पंच मटायू तो की उत्पत्ति होती है। संपूर्ण सृष्टि प्रकृति एवं तद् प्रसूत तत्वों का खेल है। योग दर्शन संख्या की पूरी तत्त्व मीमांसा को स्वीकार कर उसमें एक तत्त्व ईश्वर की वृद्धि कर देता है।

वैशेविक दर्शन की तत्त्व मीमांसा में 6 भाव पदार्थ एवं एक अभाव पदार्थ है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष एवं समवाय भाव पदार्थ हैं। सातवां अभाव पदार्थ है। जिसका ज्ञान अनुमान से होता है। संपूर्ण जगत् नित्य परमाणुओं से निर्मित है। नित्य परमाणुओं में आद्य स्चन्दन ईश्वर द्वारा होता है।

न्याय दर्शन में बारह प्रमेय माने गये हैं। आत्मा चेतन है किन्तु चैतन्य उसका स्वाभाविक नहीं आकस्मिक गुण है। मन एवं इन्द्रियों द्वारा विषय के संपर्क में आने पर उसमें चैतन्य एवं ज्ञान का उदय होता है। आत्मा में कर्तृव्य, मोकृत्व, ज्ञातृत्व आदि धर्म तभी संभव हैं जब वह शरीरावाच्छेना हो। ईश्वर जगत् कर्ता, धर्ता एवं संहर्चा है। वह जगत् का निमित्र कारण है, उपादन कारण नित्य परमाणु हैं। इसी न्याय दर्शन की तत्त्व मीमांसा बहुत्ववादी वास्तववाद है। ईश्वर की सिद्धि के लिए अनेक तर्क दिये गये हैं।

मीमांसा दर्शन की तत्त्व मीमांसा बाह्य सत्तावादी है। भौतिक जगत् के अतिरिक्त आत्माओं की सत्ता है। इसकी तत्त्व मीमांसा में ईश्वर को स्थान नहीं है। जगत् अनादि तथा अनन्त है। न इसकी सृष्टि होती है न इसका प्रलय होता है। जगत् का निर्माण आत्माओं के पूर्व अर्जित कर्मानुसार भौतिक तत्वों से होता है।

अद्वैत वेदान्त की तत्त्व मीमांसा प्राय: उपनिषदों की तत्त्व मीमांसा जैसी है। एक मात्र सत्ता

आत्मा या ब्रह्म है। जगत् ब्रह्म का विवर्त है। माया अधिष्ठान ब्रह्म में जगत् को दिखाती है। जगत् की सत्ता पर आर्थिक नहीं व्यावहारिक है। ब्रहम ज्ञान होने पर जगत और माया दोनों की सत्ता मिथ्या हो जाती है।

रामानुज वेदान्त में तत्त्व चित् अचित् विशिष्ट है। ईश्वर एक और अद्वितीय है। किन्तु चित् और अचित् उसके शरीर हैं और वह शरीरी है। चित् और अचित् से वह संसार को बनाता है। वह जगत् का निमित्रो पादान कारण है। जगत् ब्रहम का परिणाम होने से वास्ताविक है।

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1) तत्त्व मीमांसा – दर्शन की शाखा जिसमें सत्ता के अस्तित्व एवं धर्म सम्बन्धी प्रश्नों की मीमांसा हो।
2) दर्शन – तत्त्व साक्षात्कार एवं उसका साधन
3) स्वाभाविक लक्षण – जो तत्त्व में सर्वदा वर्तमान रहे।
4) आकस्मिक लक्षण – जो प्रसंग विशेष में उपस्थित हो।
5) ऐन्द्रिय अनुभूति – पंचज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभूति।
6) अनैन्द्रिय अनुभूति – अन्तरात्मा की अनुभूति या दिव्य अनुभूति।
7) त्रिगुण – सत्व, रज एवं तम।
8) परमाणु किसी तत्त्व का आन्तीय भाग जिसका विभाजन न हो सके।
9) निदिध्यासन – ध्यान करना, तत्त्व से अपने को जोड़ना
10) विशिष्टाद्वैत – चित् एवं अचित् विशिष्ट ईश्वर
11) उपादान कारण – निर्माण सामग्री
12) निमित्र कारण – वस्तु निर्माता।

1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

ऋग्वेद	संस्कृत संस्थान वरेली 2002 ई.
यजुर्वेद	संस्कृत संस्थान वरेली 2002 ई.
अथर्ववेद	संस्कृत संस्थान वरेली 2002 ई.
ईशादि नौ उपानिषद् शांकरभाष्य	गीता प्रेस गोरखपुर 2071 ई.
छान्दोग्योपनिषद्	श्री रामानन्द वेदान्त प्रचारक समिति अहमदाबाद 2025 सं.
बृहदारण्यक उपनिषद्	श्री रामानन्द वेदान्त प्रचारक समिति अहमदाबाद 2025 सं.
श्रीमद्भगवत् गीता	गीता प्रेस गोरखपुर 2041 सं.
ब्रह्म सूक्त शंकरभाष्य	चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली 2011

ब्रह्म सूक्त श्रीभाष्य	निर्णय सागर प्रेस ववर्ई
रामानुजाचार्य	वेदान्तसार
रामानुजाचार्य	वेदार्थ संग्रह
वाचस्पति	न्याय सूक्त वार्तिक तात्पर्य दीपिका
वात्स्यापन	न्याय सूक्त भाष्य, जीवान्द विद्यासागर प्रेस कलकत्ता
प्रशस्त्रपाद	धर्मपदार्थ संग्रह - चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी
गौतम	न्याय सूक्त
अलंभह	तर्क संग्रह
कणाद्	कणाद् सूक्त
उदयनाचार्य	किरणावली
श्रीधर	न्याय कन्दती
ईश्वर कृपण	सांख्य व्यारिका
कपिल	सांख्य सूक्त
कुमारिल भट्ट	श्लोक वार्तिक
मैसूर हिरियला	भारतीय दर्शन रूपरेखा, राज कमल प्रकाशन दिल्ली 1965
चन्द्र धर शर्मा	भारतीय दर्शन : आलोचना एवं अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी 1991
इन्द्र मोहन दत्र एवं सतीश चन्द्र चट्टोपाधयाय	भारतीय दर्शन पुस्तक भण्डार पटन 1982
बलदेव उपाध्याय	भारतीय दर्शन चौखम्भा ओर्ययन्टल प्रकाशन दिल्ली
बद्रीनाथ सिंह	भारतीय दर्शन, स्टूडेण्टस फ्रेण्ड्स एण्ड कम्पनी हिन्दू विश्व विद्यालय लंका वाराणसी 1996।

1.7 बोध प्रश्न

वृहद् उत्तीय प्रश्न

1) दर्शन शास्त्र का तत्त्व मीमांसा में क्या योगदान है?

2) क्या संहिताओं में तत्त्व मीमांसा पाई जाती है? स्पष्ट कीजिए।

3) प्रजापति द्वारा विरोचन एवं इत्ते को दिए उपदेश की समीक्षा कीजिए।

4) सांख्य तत्त्व मीमांसा में प्रकृति एवं उसके तत्वों की विवेचना कीजिए।

5) शंकराचार्य के अद्वैतवाद की व्याख्या कीजिए।

6) रामानुजा चार्य के विशिष्टा द्वैत मत की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1) दर्शन शब्द का व्युत्पत्ति जन्य अर्थ क्या है?

2) तत्त्व मीमांसा किसे कहते हैं?

3) तत्त्व मीमांसा के मूल प्रश्न क्या है?

4) सांख्य मत में पुरूष की अनेकता का तर्क क्या है?

5) नारद सनत्कुमार संवाद संक्षेप में बताइए।

6) आत्मा और ब्रहम की एकता पर प्रकाश डालिए।

7) न्याय तत्त्व मीमांसा में बारह प्रमेय कौन हैं?

8) वैशेषिक दर्शन का विशेष नाम क्यों पड़ा।

9) अभाव पदार्थ क्या है? कितने प्रकार का हैं।

10) वैशेषिक दर्शन में परमाणु की परिभाषा कैसे की गई है?